

आयुर्वेद में भावना: एक दार्शनिक विश्लेषण

मोहित वासदेव

सहायक प्रोफेसर, योग विभाग, सरकारी योग शिक्षा और स्वास्थ्य महाविद्यालय, चंडीगढ़

मन के तीन पहलू होते हैं- भावात्मक, बोधात्मक, औरक्रियात्मक। इनके बिना मन की कल्पना नहीं की जा सकती। संवेग में भावात्मक पहलू की प्रधानता रहती है। जब प्रिय-अप्रिय का भाव किसी कारण वश प्रबल हो जाता है तब संवेग की उत्पत्ति होती है। यह तीव्र भाव के अनुभव की अवस्था है। इसका सम्बन्ध किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार से अवश्य रहता है। संवेग की विशेषताएं निम्नलिखित हैं और इनके द्वारा इसके स्वरूप और धारणा का ठीक अनुमान किया जा सकता है। पहली विशेषता है कि बिना भाव के संवेग नहीं हो सकता। भाव साधारण अनुभव होता है। जब भाव तीव्र हो जाता है तब क्रोध, घृणा, भय, प्रेम इत्यादि के संवेग होते हैं। दूसरी विशेषता यह है कि एक ही वातावरण में दो व्यक्ति दो प्रकार के संवेग का अनुभव करते हैं। संवेग की तीसरी विशेषता है कि यह एक सामान्य अनुभव है। सभी इसका अनुभव करते हैं। हां यह संभव है कि कोई इसका अनुभव अधिक करता है और कोई कम। चौथी विशेषता है कि जब कभी संवेग उत्पन्न होता है शरीर में कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। संवेग की पांचवी विशेषता है कि यह सदैव वृत्ति के साथ उत्पन्न होता है। संवेग में भाव की प्रधानता होती है और वृत्ति में ज्ञान और क्रिया की। संवेग की छठी विशेषता यह है कि इसका आरोपण किसी न किसी विषय-वस्तु या विषय पर अवश्य होता है। ऐसा कभी नहीं होता कि संवेग का अनुभव बिना विषय-वस्तु या व्यक्ति के हो।

संवेग कई प्रकार के होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य में केवल प्रेम का संवेग होता है। अन्य संवेग इसी के विभिन्न रूप हैं। मनोविश्लेषण की इस अवधारणा में दोष यह है कि व्यक्ति को उसकी भावनाओं के चारों ओर घूमने के लिए बनाया जाता है; उसका मन इच्छा की वस्तु से दूर नहीं खींचा जाता है। दूसरी ओर, आयुर्वेद और योग में बताए गए तरीकों से, मन को मानस के दिव्य गुणों की ओर निर्देशित किया जाता है। मन के सामंजस्यपूर्ण कामकाज में व्यवधान बाहर से आने वाले संवेगों के निरंतर दमन के कारण दिखाया गया है, जो इसके दिव्य स्वभाव के लिए विदेशी संवेग हैं; मन के अव्यवस्थित चरणों को फिर से याद किया जाता है और पुनर्गठित किया जाता है, और एकीकृत मन तब अवचेतन के दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए निर्देशित होता है। यह मनोविश्लेषण के बजाय मन का संश्लेषण है। जब सब संवेग व्यवस्थित रहते हैं, एक संवेग दूसरे संवेग पर आधिपत्य नहीं करता, मनुष्य के आभ्यन्तरिक क्षेत्र में किसी प्रकार का विद्रोह नहीं होता। विद्रोह-संघर्ष तभी होता है जब कोई भी संवेग अनुपयुक्त रूप से तीव्र हो जाता है और मनुष्य उसी के भाव-लहर में बहने लगता है।

मनुष्य का आचरण संवेग पर निर्भर है। जिस व्यक्ति के संवेग का परिमार्जन हो जाता है उस व्यक्ति में अच्छे स्थायी भाव की नींव पड़ती है और इस प्रकार उस व्यक्ति का आचरण सभ्य और सुसंस्कृत होता है; जिस व्यक्ति के संवेग का परिमार्जन नहीं होता उसमें अच्छे स्थायीभाव नहीं बनते और वह प्रवृत्तिशील होता है और प्रकृत रूप में व्यवहार करता है। योग तथा आयुर्वेद में बताये

साधनों से संवेग का परिमार्जन किया जा सकता है। हर एक संवेग का अपना महत्व और मूल्य है। परिमार्जन और मार्गका अन्तीकरण करके उसमें उपयुक्त परिवर्तन लाया जा सकता है- अनुपयुक्त व्यक्ति, वस्तु और विचार की ओर से हटाकर उपयुक्त व्यक्ति, वस्तु और विचार की ओर लगाया जा सकता है।

संवेग के स्वरूप, प्रकार और उपयोग पर विचार करने के बाद यह देखना है कि किस प्रकार इन्हें व्यवस्थित करके हम अच्छे स्थायी भाव का निर्माण कर सकते हैं। स्थायीभाव एक विषय-वस्तु के प्रति विभिन्न संवेगों का संगठन है। स्थायीभाव संवेगों को एक सूत्र में बाँधता है।

कारण-आत्मा, सूक्ष्म-आत्मा, स्थूल-आत्मा ये तीनों क्रमशः दर्शन भाषा में कारण-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, स्थूल-शरीर नामों से प्रसिद्ध हैं। विद्या-कर्म कारण शरीरके, काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, ईर्ष्या आदि सूक्ष्म शरीर के एवं वात- पित्त- कफ स्थूल शरीर के धातु माने गए हैं। इन धातुओं का वैषम्य ही दुःख का कारण है। अयुक्त आहार के सेवन से वात आदि स्थूल धातु कुपित हो जाते हैं, जिससे स्थूल शरीर व्याधि ग्रस्त हो जाता है। रजस गुण के कारण अज्ञानवश हीन आचरण परायणता से काम, क्रोध आदि सूक्ष्म धातु कुपित हो जाते हैं, जिससे मन (सूक्ष्म शरीर) दुःखी बन जाता है एवं अज्ञान वश शास्त्र-उपदेश आदि की उपेक्षा से विद्या आदि धातु कुपित हो जाते हैं, जिससे कारण शरीर दुःखी बन जाता है। चरक, सुश्रुत इन दोनों ने ही मानस व्याधियों में क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया, दैन्य, मात्सर्य, काम, लोभ, इच्छा और द्वेष इन सबका समावेश किया है। इनके सम्बन्ध में मिथ्यायोग, अयोग तथा अतियोग कैसे हुआ करते हैं, यह भी उन्होंने बतलाया है। त्रिविध औषधों में चरक ने 'सत्त्वावजयः पुनरहितेभ्यो अर्थेभ्यो मनोनिग्रहः' (च. सू. अ. 11.62) यह भी एक औषध या उपाय बतलाया है। 'सत्त्वावजय' ही मानस रोगों की मूल चिकित्सा है। सत्त्व अर्थात् मन का, अवजय अर्थात् निग्रह करना 'सत्त्वावजय' कहलाता है। इसके लिए अहित विषयों से मन को रोका जाता है। मन के बल को सामान्यतया आयुर्वेद में 'सत्त्व' शब्द से कहा गया है। दुर्निग्रह मन का नियंत्रण करने वाला, मन का जो सारभूत अंश है वही 'सत्त्व' है। इसे फ्रायड के शब्दों में सुपर इगो (Super ego) भी कह सकते हैं। आचार्य चरक ने त्रिविध सत्त्वावजय चिकित्सा का वर्णन दिया है- मानस रोग से पीड़ित बुद्धिमान व्यक्ति को निम्न तीन प्रकार की चिकित्सा का आश्रय लेना चाहिए -

(१) बुद्धि से हित एवं अहित का भली भाँति विचार करते हुए अहितकर धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी विषयों का सेवन न करना और हितकर धर्म, अर्थ, काम का सेवन करना। क्योंकि संसार में इन तीनों के बिना कुछ भी मानसिक सुख अथवा दुःख उत्पन्न नहीं होता।

(२) मानसिक रोगों का उपाय करने वाले लोगों की सेवा।

(३) आत्मज्ञान, देवज्ञान, कुलज्ञान, कालज्ञान, बलज्ञान और शक्तिज्ञान में विशेष प्रयत्नशील रहना (Sharma, 2004, vol.1, p.126-127) ।

काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ से उत्पन्न मानसविकारों को परस्पर विपरीत (यथा - क्रोध में हर्ष इत्यादि) भावों से मन की शान्ति- मानसिक दोषों का शमन किया जा सकता है। पतञ्जलि इसे प्रतिपक्ष भावना कहते हैं। 'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्' (प. यो. सू. 2.33)।

मनोबल भी शारीरिक बल की भाँति तीन प्रकार से उत्पन्न या प्राप्त होता है- सहज (माता-

पिता, वंश से प्राप्त, जन्मजात), कालज और युक्तिकृत। सहज बल प्राकृत होता है, शरीर और मन का जो स्वाभाविक बल है उसको सहज बल कहते हैं। कालज बल ऋतुविभाग से उत्पन्न और वयःकृत होता है; युक्तिकृत बल आहार, चेष्टा, योग्य (रसायन प्रयोग) से उत्पन्न होता है। देश, काल, प्रकृति, बल आदि को ध्यान में रखते हुए औषधि, आहार-विहार आदि का विचार पूर्वक यथा योग्य निर्णय करके जो निर्देश दिया जाता है- इसी का नाम 'योजना' है और यही योजना 'युक्ति' कहलाती है। जो कल्पना यौगिकी (युक्ति युक्त या विधिपूर्वक) होती है वही 'युक्ति' कहलाती है किन्तु जो कल्पना अयौगिक (अयुक्त या बिना विधिवत) होती है तो वह कल्पना के होने पर भी 'युक्ति' नहीं कहलाती। गीता में कहा है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (गी. 6.17)

अर्थात् जिसका आहार और विहार नियमित है, कार्यों में जिसकी चेष्टा नियमित है, तथा जिसकी निद्रा और जागरण नियत अर्थात् परिमित है, इस प्रकार के पुरुष का योगाभ्यास दुःखनिवर्तक होता है अर्थात् योगसिद्धि होती है।

आयुर्वेद में मन को सत्त्व कहते हैं। मन आत्मा के संयोग से शरीर और इन्द्रियों का प्रेरक और धारक (नियामक) होता है। बल भेद से सत्त्व के तीन प्रकार हैं- प्रवरसत्त्व (उत्तम मनोबल), मध्यमसत्त्व (मध्यम मनोबल) और अवरसत्त्व (अल्प मनोबल)। 'प्रवर सत्त्व' वाले व्यक्ति ही 'सत्त्वसार' वाले कहे जाते हैं (आयुर्वेद में अष्टविध सार परीक्षा में श्रेष्ठ धातुओं के आधार पर सात और एक प्रबल मन-की दृष्टि से गणना की गयी है)। वे सत्त्वगुण की अधिकता के कारण दुर्बल शरीर होने पर भी निज और आगन्तुककारणों से होने वाली सब महान पीड़ाओं में अव्यथ-अव्यग्र-अव्याकुल दिखाई देते हैं। 'मध्य सत्त्व' वाले दूसरे को वेदना सहन करते हुए देखकर 'मुझे भी इसी प्रकार पीड़ा सहन करनी चाहिए' ऐसा सोचकर स्वयं (के मन) को संभालते हैं अथवा दूसरे के उपदेश आदि से मन को धीरज बंधाते हैं। 'हीन या अवर सत्त्व' - वाले व्यक्ति न अपने मनोबल से और न दूसरे के उपदेश आदि से मन को दृढ़ कर सकते हैं। वे बड़े शरीर वाले होने पर भी छोटी-छोटी वेदनाओं को सहन करने में असमर्थ दिखाई देते हैं। भय, शोक, क्रोध, मोह, मान तथा भयानक, अप्रिय, घृणित और विकृत प्रसंग उपस्थित होने पर तथा पशु और मनुष्य के रक्त-मांस को देख कर विषाद (खेद), वैवर्ण्य (शरीर का रंग फीका पड़ना), मूर्च्छा, उन्माद, भ्रम चक्कर आना, गिर जाना आदि से पीड़ित होते हैं अथवा मृत्यु को प्राप्त होते हैं (च. वि. अ. ८. १३६-१३७)।

मन के तीन गुण होते हैं- सत्त्व, रजस और तमस। मन का बल सत्त्वगुण की अधिकता पर निर्भर करता है। सत्त्व गुण जितना ही अधिक उत्कृष्ट होगा उतना ही पीड़ादि की सहिष्णुता लक्षण वाला मनोबल प्रकट होगा। सत्त्व गुण की अधिकता युक्त मन वाले को 'सत्त्वसार' कहा जाता है। स्मृतिवान, भक्तिवान, कृतज्ञ, विद्वान, पवित्र रहने वाले, बड़े उत्साही, दक्ष (निपुण), धैर्यवान, युद्ध में पराक्रम के साथ लड़ने वाले, कभी खेद न करने वाले, सुव्यवस्थित गति वाले, गंभीर बुद्धि और चेष्टा वाले तथा कल्याण की भावना वाले व्यक्ति 'सत्त्वसार' कहलाते हैं।

स्मृतिभक्तिप्रज्ञाशौर्यशौचोपेतं कल्याणाभिनिवेशं सत्त्वसारं विद्यात्। (सु. सू. अ. 35.20)

सुश्रुत कहते हैं- 'सत्त्वन्तु व्यसनाभ्युदयक्रियादिस्थानेष्वैकल्यकरम्' (सु. सू. अ. 35.58)। आपत्तियों में अविचलित रहना, अभ्युदय के प्रसंग में आपे से बाहर न हो जाना, इन्हीं बातों को सुश्रुत ने 'सत्त्व' संज्ञा दी है। इस कथन के समर्थनार्थ वे यह श्लोक लिखते हैं: 'सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना। राजसः स्तभ्यमानोन्यैः सहते नैव तामसः॥' (सु.सू. अ. 35.59) तात्पर्य यह है कि आत्मसंयम के द्वारा सत्त्ववान् मनुष्य सब कुछ सहता है, अन्यो के रोकने तथा दृढ़ करने से राजस (रजोगुण प्रधान मनुष्य) सुख दुःख आदि को सह सकता है तथा तामस (तमोगुण प्रधान मनुष्य) किसी भांति भी सुख दुःख आदि तथा प्राप्त क्रिया को नहीं सह सकता। मनुष्य का सत्त्व त्रिगुणान्तर्गत सत्त्व के द्वारा मुख्यतः बनता है, यह सभी भारतीय दर्शनों का कथन है। इसका कारण यह है कि संश्लेषण (Synthesis) या हार्मनी (Harmony) या समग्रता (Integration) ये सब बातें सत्त्वगुण के द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। जिस बात को आजकल करेक्टर (character) के नाम से पुकारा जाता है वह सत्त्व ही है। कहीं कहीं आयुर्वेद में इसे 'शील' भी कहा गया है (शील प्रकृति/शील विकृति)। यह शील बनाने में इच्छा शक्ति (will power) का बहुत बड़ा हाथ है, यह मैक्डूगल ने अच्छी तरह दिखलाया है। मैक्डूगल की करेक्टर (Character) की व्याख्या तथा आयुर्वेद की एतत्सम्बन्धी व्याख्या तुलनाई है।

According to McDugall, 'The native propensities are the chief part of the raw material which becomes organized to form character. The process of organization is of two stages. The first stage is the formation of sentiments. The second stage is the building of the sentiments into a harmoniously co-operating system. Such a system of sentiments is character. The strength of character is a matter of the degree of harmony and integration attained by the system, and perhaps also of the degree to which the whole organisation is solidified by exercise (The Energies of Men, p.188).

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि सुसंगतरूप से विकसित व्यक्तित्व (Harmoniously developed personality) के ही वर्णन यहां दिये गये हैं और चरित्र इस व्यक्तित्व का ही मुख्य अंग है। मनुष्य के अंदर भावना की शक्ति अतर्क्य है। यद्यपि भावना के स्वरूप का निश्चय करना अत्यंत कठिन कार्य है, तथापि उसकी शक्ति अत्यंत विलक्षण है, इसमें मतभेद नहीं हो सकता। भावना का यहां तक सम्बन्ध है कि, अच्छी भावना चित्त में स्थिर रहने शरीर की निरोगता, मन की उल्लास वृत्ति और इन्द्रियों की कार्यक्षमता सिद्ध होती है, और बुरी भावना से इसके विपरीत परिणाम दिखाई देते हैं। योग शास्त्र का जो आचार व्यवहार है, उसके अनुसार अपना आचरण करने से भावना की शुद्धि होती है। इस लिए इस रीति से इसकी पवित्रता संपादन करनी चाहिये।

भावुक वह मानव है, जो अपनी इन्द्रियों के द्वारा मन से अधिक काम लिया करता है। मन स्वभावतः दूरङ्गम है, चञ्चल है, अस्थिर है। अपनी इस अस्थिरता के कारण मन सदा शीघ्रगामी बना रहता है। कभी यह कर, कभी वह कर, कभी इसकी चिन्ता, कभी उसकी चिन्ता, इस प्रकार की बाह्यवृत्तियों के संघर्ष में आकर स्वभावतः चञ्चल मन और भी अधिक प्रगतिशील बन जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि, इस संघर्ष से भावुक मन भी सूक्ष्म बन जाता है, इन्द्रियाँ भी

अभ्यास वश पैनी बन जाती है इन्द्रिय द्वारा शरीराग्नि के अधिक मात्रा में खर्च हो जाने से शरीर भी सूक्ष्म (दुर्बल-कृश) बन जाता है। इस दुर्बलता के ही कारण इसका कृश शरीर रुद्राग्नि लक्षण क्रोध का संवरण करने में असमर्थ हो जाता है। मनोवेग प्राधान्य से नवीन कामनाएँ (इच्छाएँ) भी इसे चारों ओर से वेष्टित कर लेती है। इन अनेक वृत्तियों के एक साथ संचालित रहने के लिए कभी कभी इसका मन नितान्त उदासीन-सा, स्तब्ध-सा, कर्तव्य विमूढ़ सा भी बनता रहता है। इस प्रकार अस्थिर मन की अस्थिर वृत्तियों के संघर्ष से शरीर सूक्ष्मता, मन की सूक्ष्मता, इन्द्रिय सूक्ष्मता के साथ-साथ इस मनोवशवर्ती भावुक मानव पर काम-क्रोध-मोह, इन तीन शत्रुओं का भी आधिपत्य हो जाता है। भावुकता परिस्थिति का विवेक नहीं होने देती। विवेक का अभाव ही दुःख का मूल कारण है।

पतञ्जलि ने चित्तवृत्तियों की गणना करते हुए चित्त के विक्षेपों की भी गणना की है।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादआलस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वा
नि चित्तविक्षेपाः ते अन्तरायाः (प.यो.सू. १.३०)।

व्याधि (शारीरिक एवं मानसिक), चित्त की अकर्मण्यता, संशय, प्रमाद, आलस्य (शरीर और मन का), अविरति, भ्रान्ति-दर्शन (विपर्यय-ज्ञान), समाधि-भूमि की अप्राप्ति और प्राप्त हुई समाधि-भूमि पर चित्त का स्थिर न होना- ये ९ चित्त-विक्षेप या योगमल हैं; क्योंकि ये योग-मार्ग के अन्तराय स्वरूप हैं। विक्षिप्त चित्तवाले मनुष्यों में ये लक्षण देखे जाते हैं- दुःख (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक), चित्त का क्षोभ, शरीर का कम्प और श्वासोच्छ्वास। ये लक्षण स्वस्थ चित्तवाले मनुष्यों में नहीं पाये जाते। आगे चल कर पतञ्जलि चित्त के पाँच क्लेशों-अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश की गणना करते हैं जो कि समाधि मार्ग में विघ्नरूप हैं। इस प्रकार योगसूत्रकार के मतानुसार चित्त एक प्रकार की रणभूमि है जिसमें विविध प्रकार के बल एक दूसरे के साथ स्पर्धा करके चित्तव्यापारों पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश करते हैं। इनसे बचकर आगे बढ़ने और चित्तव्यापारों को उचित दिशा में अभिमुख करने का प्रयत्न प्रत्येक विद्वान् पुरुष को करना चाहिए।

गीता, महाभारत आदि में भी राग, द्वेष, मद, मोह आदि द्वन्द्वों का उल्लेख मिलता है। राग, द्वेष और मोह इन तीन भावों में इतर मानसिक भावों का समावेश हो जाता है ऐसा प्राचीनों का मन्तव्य प्रतीत होता है। राग में काम, लोभ, तृषा प्रायः होते हैं, ये तीनों राग के ही विकार हैं। इसी प्रकार क्रोध, मद, मत्सरता ये तीनों द्वेष के विकार हैं और मोह, अविवेक, अनवधान आदि अस्मिता के रूप हैं। ये सब मिलकर जीव आत्मा के बंधन के लिए 'पाश' कहे जाते हैं। इन्हीं के द्वारा जीव-आत्मा सर्वदा फँसा रहता है। चरक ने किन-किन वेगों को नहीं रोकना चाहिए और किनको रोकना चाहिए इसका निर्देश करते हुए "लोभ, शोक, भय, क्रोध, अभिमान इनके वेगों को रोकना चाहिए। और बुद्धिमान को उचित है की निर्लज्जता, ईर्ष्या, अत्यन्त राग इनको भी त्याग देवे (च. सू. अ. ७. २५)। आसक्ति के तीव्र संवेग से वात, द्वेष के तीव्र संवेग से पित्त और मोह के तीव्र संवेग से कफ दूषित हो जाता है। तम के तीव्र संवेग से जडता का उत्पन्न होना बतलाया गया है। जब जडता उत्पन्न हो जाती है, तब चित्त में अशुद्धि आ जाती है। राग आदि से दूषित चित्त अनेक रोगों का

कारण बन जाता है। इसीलिए व्याधि-चिकित्सा में सर्वप्रथम व्याधि का निर्माण ही न हो इसीलिए चित्त को शुद्ध रखना सर्वाधिक आवश्यक है। चित्त काम-क्रोध-भय-शोक तथा मत्सर आदि विकारों से सर्वथा मुक्त रहे तो व्याधि का प्रादुर्भाव ही न हो। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीवन यदि धार्मिक, सदाचार- सम्पन्न होगा तो आरोग्य तथा दीर्घ आयु का लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

इसी से मिलता-जुलता उपदेश योगसूत्रकार ने 'यम' की गणना के प्रसंग में किया है। वहाँ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच व्रतों का पालन करने का उपदेश किया है (यो. सू. 2. 30)। जैसा चित्त का भाव होता है, वैसा मनुष्य व्यवहार करता जाता है। इस चित्त को स्वाधीन करने के लिए ही आयुर्वेद तथा योग के साधनों का आश्रय लेना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Sharma, Shiv. (2004). *Charaka Samhita* (Vol.1). Mumbai: Khemraj Shrikrishnadass Publication.
- Sharma, Muralidhar. (2003). *Sushruta Samhita* (Vol.1). Mumbai: Khemraj Shrikrishnadass Publication.
- Jain, Rajkumar. (1997). *Ayurveda Darshan*. New Delhi: Pranavay Shodh Sansthan.
- Prasada, Rama. (2010). *Patanjali's Yoga Sutras*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd.

PURVA MIMAANSA